Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233
Continuous issue-5 | January – March 2016

डॉ. नगेंद्र का अनुसंधान-सिद्धांत विषयक प्रदेय

डॉ. नगेंद्र हमें 1985-86 में हिन्दी विभाग, कलासंकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की एम.फिल. की कक्षाओं में प्रश्नपत्र-1 अनुसंधान : प्रविधि और प्रक्रिया पढ़ाते थे । डॉ. नगेंद्र के इन व्याख्यानों में अन्य विभागों के भी शोधछात्र उपस्थित रहते थे अतः पूरी कक्षा भरी होती थी । मैं 1985-86 में दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के कला संकाय स्थित हिन्दी विभाग में एम.फिल. में अध्ययनरत था । मैं डॉ. नगेंद्र की किसी भी कक्षा में इस वर्ष अनुपस्थित नहीं रहा तथा मैंने बड़े ही मनोयोग से उनकी कक्षाओं में नोट्स लिए जो आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं । प्रस्तुत शोधालेख में मैंने डॉ. नगेंद्र की कक्षाओं में लिए गए नोट्स, उनके शोधविषयक लेखन में से अनुसंधान का स्वरूप, अनुसंधान और आलोचना, हिन्दी में शोध की कुछ समस्याएँ विषयक उनके लेखन को आधार बनाते हुए डॉ. नगेंद्र के अनुसंधान-सिद्धांत विषयक प्रदेय को विवेचित-विश्लेषित एवं मूल्यांकित करने का प्रयास निम्नलिखित रूप में किया है :

1. अनुसंधान का स्वरूप :

आज 'अनुसंधान' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'रिसर्च' के पर्याय के रूप में होता है और एक विशेष प्रकार की प्रविधि इसके साथ नियमित रूप से संबद्ध हो गई है । डॉ. नगेंद्र के अनुसार लक्ष्य भेद से अनुसंधान के स्थूलतः दो भेद किए जाते हैं – सोपाधि और निरूपाधि । अनुसंधान के प्रयोजन, प्रक्रिया और उपलब्धि की दृष्टि से उनके अनुसार दोनों में कोई मौलिक अंतर नहीं है । उपाधि सापेक्ष अनुसंधान के लिए प्रायः निम्नलिखित उपबंधों का विधान है :

1) इसमें अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण अथवा उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों का नवीन रूप से आख्यान होना चाहिए । प्रत्येक स्थिति में यह ग्रंथ इस बात का द्योतक होना चाहिए कि अभ्यर्थी में आलोचनात्मक परीक्षण तथा सम्यक निर्णय करने की क्षमता है । अभ्यर्थी को यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि उसका अनुसंधान किन अंशों में उसके अपने प्रयत्न का परिणाम है तथा वह विषय विशेष के अध्ययन को कहाँ तक और आगे बढ़ाता है ।

2) निरूपण शैली आदि की दृष्टि से भी इस ग्रंथ का रूप आकार संतोषप्रद होना चाहिए जिससे कि इसे यथावत प्रकाशित किया जा सके । (आगरा युनिवर्सिटी की पीएच.डी. नियमावली)

डॉ. नगेंद्र के अनुसार 'डॉक्टर ऑफ लैटर्स' के प्रसंग में भी प्रायः इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख है; केवल एक बात नई है । वहाँ विषय के अध्ययन को और आगे बढ़ाने के स्थान पर 'ज्ञानक्षेत्र का सीमा विस्तार' अपेक्षित माना गया है । डी.लिट. की उपाधि की गुरूता को देखकर यह उपबंध उचित भी है । अन्य विश्वविद्यालयों के नियमों में भी लगभग ये ही शब्द हैं । इस प्रकार विश्वविद्यालय विधान के अनुसार अनुसंधान के तीन तत्व हैं :

(1) अनुपलब्ध तत्वों का अन्वेषण, (2) उपलब्ध तत्वों या सिद्धांतों का नीवन आख्यान, (3) ज्ञान क्षेत्र की सीमा का विस्तार अर्थात् मौलिकता । इनके अतिरिक्त एक तत्व और भी अपेक्षित है और वह है – सुष्ठु प्रतिपादन शैली ।

अनुसंधान के इन चार गुणों में से प्रतिपादन सौष्ठव तो वाङमय के सभी रूपों के लिए समान है । इस प्रकार डॉ. नगेंद्र के अनुसार अनुसंधान के अपने विशिष्ट धर्म तीन हैं – नवीन तथ्यों का अन्वेषण, उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों का नवीन आख्यान और ज्ञान की वृद्धि ।

तथ्यान्वेषण और तथ्याख्यान को डॉ. नगेंद्र स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक सत्य के साथ अनेक तथ्य संबद्ध रहते हैं । इनमें से कुछ तथ्य तो विहित (प्रकाशित) रहते हैं किंतु अनेक तथ्य प्रायः निहित (प्रच्छन्न) रहते हैं अथवा काल के आवरण में लुप्त हो जाते हैं और उनका अन्वेषण आवश्यक हो जाता है । तथ्यानुसंधान के सामान्यतः दो रूप हैं : (1) काल के प्रवाह में लुप्त तथ्यों का अन्वेषण, और (2) विषय में निहित तथ्यों का अन्वेषण । तथ्याख्यान का वास्तविक अर्थ तथ्यों के परस्पर संबंध का उदघाटन है । तथ्य अपने वस्तु रूप में जड़ हैं किंतु मानव जीवन के संदर्भ में अर्थात् मानव चेतना के संसर्ग से जो एक नवीन अर्थ ज्योति उसमें कौध जाती है, उसी को आलंकारिकों ने व्यंजना कहा है । वास्तव में तथ्यों के आख्यान का अर्थ इसी निहित व्यंजना को विहित करना है । इस दृष्टि से तथ्यों का नवीन आख्यान या पुनराख्यान भी अनुसंधान के अंतर्गत आता है । एक तथ्य दूसरे तथ्य की सूक्ष्मता से व्यंजना करता हुआ काव्य के मर्म तक पहुँचने में सहायता देता है – और यही तथ्याख्यान है ।

अनुसंधान का तीसरा तत्व है – ज्ञान क्षेत्र का सीमा विस्तार । वास्तव में यही उसका प्राणतत्व अथवा व्यावर्तक धर्म है । नवीन तथ्यों की उपलब्धि, उपलब्ध तथ्यों अथवा सिद्धांतों का नवीन आख्यान – ये दोनों तत्व इसी सिद्धि के साधन हैं । इनमें से कोई एक तत्व या सभी तत्व मिलकर अंततः ज्ञान की वृद्धि करते हैं । यह ज्ञान की वृद्धि ही वास्तव में अनुसंधान का मूल उद्देश्य है । ज्ञानवृद्धि ही अनुसंधान का व्यावर्तक धर्म है ।

2. अनुसंधान और आलोचना :

डॉ. नगेंद्र के अनुसार आलोचना का शब्दार्थ है – सर्वांग निरीक्षण । साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है – किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरीक्षण । इसके अंतर्गत तीन कर्तव्य कर्म आते हैं – (1) प्रभाव ग्रहण, (2) व्याख्या विश्लेषण, और (3) मूल्यांकन अथवा निर्णय । आलोचना मूलतः कलाकृति द्वारा प्रमाता के हृदय में उत्पन्न प्रभाव को व्यक्त करती है । इसके उपरांत वह प्रतिक्रिया की प्रियता अथवा अप्रियता के कारणों का विश्लेषण करती है : सौंदर्यशास्त्र के अनुसार रूप का, मनोविज्ञान के अनुसार स्रष्टा और भावक की मानसिक परिस्थितियों का और समाजशास्त्र के अनुसार दोनों की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करती है कि कोई कलाकृति भावक को प्रिय अथवा अप्रिय क्यों लगती है । और अंत में इन दोनों प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है ।

3. अनुसंधान और आलोचना का परस्पर संबंध :

डॉ. नगेंद्र का मानना है कि अनुसंधान और आलोचना दोनों की केवल जाति ही नहीं, उपजाति भी एक है । अतः दोनों में पर्याप्त साम्य है । उनके अनुसार दोनों की पद्धति बहुत कुछ समान है । व्याख्या विश्लेषण और निर्णय दोनों में

समान हैं । अनुसंधान में जो तथ्याख्यान है, वही आलोचना में व्याख्या-विश्लेषण है तथा दोनों में विवेचन, कार्यकारण सूत्र का अन्वेषण, परस्पर संबंध तथा अर्थ व्यंजना आदि का उदघाटन समान रूप से रहता है । इसी प्रकार पक्ष-विपक्ष के संतुलन आदि के आधार पर निष्कर्ष और निर्णय की पद्धति भी दोनों में प्रायः समान ही है । अतः निष्कर्ष और निर्णय का महत्व अनुसंधान और आलोचना दोनों के लिए समान रूप से मान्य है, उसके बिना विचार की प्रक्रिया पूरी नहीं होती । फिर भी, अनुसंधान और आलोचना पर्याय नहीं है ।

डॉ. नगेंद्र ने अनुसंधान और आलोचना के साम्य-वैषम्य को निम्नानुसार रखा है :

साम्य :

(1) अनुसंधान और आलोचना एक ही विधा – साहित्यिक विधा के दो उपभेद हैं ।

(2) दोनों की पद्धति बहुत कुछ समान है । दोनों की प्रक्रिया में तथ्यों के संकलन-त्याग और ग्रहण, व्याख्या-विश्लेषण, निष्कर्ष ग्रहण का प्रायः उपयोग किया जाता है ।

वैषम्य :

(1) किंतु अनुसंधान और आलोचना पर्याय नहीं हैं – धात्वर्थ के अनुरूप अनुसंधान में अन्वेषण पर अधिक बल रहता है और आलोचना में निरीक्षण-परीक्षण पर ।

(2) अनुसंधान के अनेक रूप ऐसे हैं जो आलोचना के अंतर्गत नहीं आते और इसी प्रकार आलोचना के भी कतिपय रूप अनुसंधान के उपबंधों की पूर्ति नहीं कर पाते ।

(3) आत्माभिव्यक्ति अथवा कलातत्व आलोचना का अनिवार्य गुण है किंतु अनुसंधान में उसका महत्व गौण ही रहेगा ।

(4) वैज्ञानिक तटस्थता और उसकी अनुवर्ती वैज्ञानिक प्रविधि एवं प्रक्रिया का महत्व अनुसंधान के लिए अनिवार्य है, आलोचना के लिए उसका महत्व परिशिष्ट रूप में ही रहता है ।

(5) अनुसंधान का प्रत्यक्ष उद्देश्य है – ज्ञान की वृद्धि और आलोचना की सिद्धि – मर्म की अवगति या अनुभूति ।

अनुसंधान और आलोचना के संबंध में डॉ. नगेंद्र का मंतव्य इस प्रकार है :

1) अनुसंधान और आलोचना निश्चय ही पर्याय नहीं हैं – अनुसंधानकर्मी को यह समझकर अपने कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए । इससे उसकी प्रवृत्ति तथ्यशोध के प्रति जागरूक रहेगी और उसके विवेचन का तथ्याधार पुष्ट हो जाएगा । वह परागत तथ्यों पर निर्भर न रहकर स्वयं भी नवीन सामग्री के संकलन का प्रयत्न करेगा या कम से कम प्राप्त सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा स्वयं करेगा । प्रत्येक शोधकर्ता को इस प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए ।

2) अनेक विषय ऐसे हो सकते हैं जिनके अंतर्गत तथ्यान्वेषण से भी काम चल सकता है । कम से कम पीएच.डी. की उपाधि के लिए उतना पर्याप्त हो सकता है । किंतु यह अनुसंधान का अथ है, इति नहीं है । उसी विषय पर

तथ्याख्यान और आलोचना के द्वारा गहन अनुसंधान की संभावनाएँ बनी रहती हैं । वहीं शोधार्थी अथवा कोई अन्य उनसे यथाविधि लाभ उठा सकता है और उसे उठाना चाहिए ।

3) तथ्यान्वेषण अनुसंधान का आधार मात्र है और प्रारंभिक रूप होने के नाते अपेक्षाकृत निम्नतर रूप भी है ।

4) आलोचनात्मक प्रतिभा के बिना डॉ. नगेंद्र उत्कृष्ट अनुसंधाता की कल्पना नहीं कर सकते । उनके अनुसार शोध नियमों के अनुसार भी परीक्षक को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि अनुसंधाता ने अपने प्रबंध में आलोचन क्षमता का परिचय दिया है । सत्यशोध के तीन संस्थान डॉ. नगेंद्र स्वीकार करते हैं : तथ्य संग्रह, विचार और प्रतीति । उपलब्ध तथ्य को विचार में परिणत किए बिना ज्ञान की वृद्धि संभव नहीं है । सत्य को विचार रूप देने के लिए भावन की आवश्यकता पड़ती है और विचार को प्रतीति में परिणत करने के लिए दर्शन अनिवार्य है – और ये दोनों ही साहित्यालोचन के अंतरंग तत्व हैं । अतः डॉ. नगेंद्र का मानना है कि उत्कृष्ट साहित्यिक आलोचना साहित्यिक अनुसंधान का उत्कृष्ट रूप है इसलिए शोधार्थी को इस महत्वपूर्ण तथ्य के विषय में निर्भ्रांत रहना चाहिए ।

4. हिन्दी में शोध की कुछ समस्याएँ :

डॉ. नगेंद्र ने शोध की समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि हिन्दी में शोध की सबसे प्रमुख समस्या शोधार्थियों की वर्तमान संख्या है । दूसरी समस्या पुनरावृत्ति की है । एक ही विषय पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्य होने से श्रम का अपव्यय और स्तर का ह्रास इससे होना स्वाभाविक ही है । डॉ. नगेंद्र मानते हैं कि इस संबंध में उचित आयोजन से इस दोष का परिहार हो सकता है । कई स्थानों पर एक ही विषय पर शोध होना अपने आपमें दोष नहीं है; यह विषय़ पर निर्भर है । यदि विषय की परिधि सीमित है तो पुनरावृत्ति की आशंका हो सकती है अन्यथा व्यापक विषयों पर तो शोध के लिए अत्यंत अवकाश है – सत्य के अनेक पहलुओं का उदघाटन भी ज्ञान के विस्तार में अमूल्य योगदान करता है । अतः इस दिशा में शोध संस्थानों के कार्य को आयोजित और समायोजित करने की आवश्यकता है जो विश्वविद्यालय स्तर पर या विभागीय स्तर पर आसानी से किया जा सकता है । ऐसा करने से पुनरावृत्ति का दोष गुण बन जाएगा और एक ही विषय के अनेक पक्षों का उदघाटन होगा तथा विवेचन में गंभीरता और सूक्ष्मता आएगी । डॉ. नगेंद्र इस संबंध में तीसरी समस्या शोध निरीक्षकों से संबंधित स्वीकार करते हैं । विश्वविद्यालयों में निरीक्षण कार्य व्यवस्थित करने के लिए अनुसंधान कक्षों की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ पर शोध पद्धति की सामूहिक रूप से नियमित शिक्षा दी जा सके ।

चौथी समस्या शोध के स्तर से जुड़ी हुई है । आजकल शोध के स्तर के गिरने की शिकायत चारों ओर से आ रही है; 'ए-वन' माल की आशा करना भले ही संगत नहीं है; फिर भी, सारे माल को घटिया नहीं कहा जा सकता । डॉ. नगेंद्र शोध स्तर के गिरने के पीछे प्रभावी कुछ कारण गिनाते हैं जिनमें शामिल हैं : विश्वविद्यालयों के बीच अस्वस्थ स्पर्धा भाव, पंडितों की पारस्परिक ईर्ष्या, जेठी पीढ़ी के लोगों की अनुदारता, हिन्दीतर भाषाओं और विषयों के विद्वानों का हिन्दी के विषय में अज्ञान और उसकी प्रगति के प्रति द्वेष आदि । कुछ निरीक्षक इतने व्यस्त होते हैं कि शोधार्थी को समय दे पाना उनके लिए संभव नहीं होता; फिर भी, वे प्रतिवर्ष अपने अधीन शोधछात्र लेते रहते हैं । अतः शोधार्थी जैसा बन पड़ता है, प्रस्तुत करके उनकी कृपा से उपाधि प्राप्त कर लेता है । कुछ निरीक्षक किसी भी विषय को अपने

मार्गदर्शन में पंजीकृत होने देते हैं जिसके संबंध में उनकी विशेषज्ञता न्यूनतम हो या न के बराबर हो । शोधार्थियों की संख्या बढ़ाने का व्यामोह भी शोध के स्तर को गिराने के प्रति जवाबदेय है । निरीक्षक की भी अपनी सीमाएँ होती हैं – बौद्धिक और शारीरिक दोनों ही तरह की । हमारे विश्वविद्यालयों में विवश होकर ऐसे विषय स्वीकार करने पड़ जाते हैं जिनमें निरीक्षक का कोई प्रेवश नहीं, कभी-कभी तो निरीक्षक विषय से सर्वथा अबोध होता है । एक ही निरीक्षक को आल्हखंड, कामायनी की भाषा, छायावाद, रीतिकाल और कहानी की शिल्पविधि जैसे सर्वथा असंबद्ध विषयों का निर्देशन करना पड़ता है । कहीं-कहीं निरीक्षक का नाम मात्र पाने के लिए भटकता हुए छात्र अनेक भौतिक सीमाएँ पार कर ऐसे निरीक्षक से जा टकराता है जिसके साथ संपर्क भी प्रायः दुर्लभ होता है । ऐसी स्थिति में शोध के सर्वत्र ऊँचे स्तर की आशा करना व्यर्थ है । डॉ. नगेंद्र का इस संबंध में सुझाव है कि कम से कम इस प्रकार के निरीक्षण कार्य पर अवश्य प्रतिबंध लगाना चाहिए । यह न नैतिक दृष्टि से उचित है, न शैक्षिक दृष्टि से ही ।

डॉ. नगेंद्र का तो इस संबंध में यहाँ तक मानना है कि शोध उपाधि का संबंध व्यावसायिक उन्नति के साथ एक उचित सीमा के भीतर ही रहना चाहिए; उत्कर्ष की कामना तो होनी ही चाहिए किंतु उत्कर्ष की धारणा केवल आर्थिक या व्यावसायिक न होकर बौद्धिक और आत्मिक भी होनी चाहिए । यह काम अधिकारियों के करने का है । अतः उन्हें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि पीएच.डी. कॉलिज शिक्षा के लिए एल.टी. का स्थानापन्न न बन जाए । इससे शिक्षा और शोध दोनों की हानि है । प्रत्येक अच्छा शोधक अच्छा शिक्षक नहीं होता – कभी-कभी वह साधारण से भी निष्कृष्ट अध्यापक सिद्ध होता है; इसलिए दोनों के उद्देश्य और पद्धति में भ्रांति नहीं करनी चाहिए ।

एक अन्य समस्या पीएच.डी. और डी.लिट. के संबंध में भी डॉ. नगेंद्र ने व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए हैं । उनके अनुसार स्तर से संबद्ध एक और व्यावहारिक समस्या है – पीएच.डी. और डी.लिट. के सापेक्षिक मूल्यांकन की । अभी तक इस विषय में बड़ी गड़बड़ रही है । पहले तो प्रायः अकेली डी.लिट. की ही उपाधि थी; फिर पीएच.डी. और डी.लिट. दो उपाधियाँ चलने लगीं; कहीं केवल एक तो कहीं तारतम्य से दोनों । आज स्थिति प्रायः स्पष्ट हो चुकी है – उत्तर भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. प्रथम शोध उपाधि हो गई है और डी.लिट. उसके बाद की जो अपने क्षेत्र में उच्चत्तम उपाधि है । डॉ. नगेंद्र का मानना है कि इस अंतर को नियमित मान्यता प्रदान कर स्तरभेद की उचित व्यवस्था अनिवार्यतः हो जानी चाहिए । जिन विश्वविद्यालयों में ऐसा नहीं है, वहाँ भी शिक्षा क्रम की एकरूपता की दृष्टि से ऐसा हो जाना आवश्यक है । इस व्यवस्था के बाद फिर शोध के निरीक्षण-परीक्षण का भी क्रमभेद स्पष्ट हो जाना चाहिए । डी.लिट. के लिए निरीक्षक की आवश्यकता नहीं है; परामर्शदाता की भी नहीं । जो दूसरे का आसरा डी.लिट. में भी तकें, उन्हें कुछ और काम करना चाहिए । मूल्यांकन की दृष्टि से भी हमारी धारणा सर्वथा निर्भ्रांत हो जानी चाहिए : पीएच.डी. की अपेक्षा डी.लिट. के शोधप्रबंध में विषय का विस्तार, विवेचन का गांभीर्य और प्रतिपादन की सर्वांगपूर्णता निश्चय ही अधिक होनी चाहिए और उसी आधार पर उसका मूल्यांकन होना चाहिए । डी.लिट. का शोधप्रबंध एक दूसरा शोधप्रबंध मात्र नहीं है : वह स्पष्टतः एक गुरूत्तर और गंभीरत्तर शोधकार्य है – संस्तवन करने से पूर्व इस विषय में परीक्षक को निश्चय ही आश्वस्त हो जाना चाहिए तभी वांछित क्रमभेद की रक्षा हो सकेगी और दोनों का अंतर सार्थक हो सकेगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ. नगेंद्र ने 1960 के दशक के आरंभ से ही अनुसंधान की पद्धति और प्रक्रिया के सैद्धांतिक विवेचन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने स्वयं प्रभूत मात्रा में शोधकार्य किया तथा शोधार्थियों को मार्गदर्शन देकर प्रभूत मात्रा में शोधकार्य कराया । अनुसंधान की प्रविधि और प्रक्रिया विषयक अध्यापन कार्य भी वे निरंतर करते रहे । उनकी पुस्तक 'अनुसंधान और आलोचना' का प्रथम संस्करण, 1961 में प्रकाशित हो ही चुका था । अतः अनुसंधान विषयक सैद्धांतिक चिंतन एवं व्यावहारिक कार्य उनका निरंतर जारी रहा । अतः डॉ. नगेंद्र का अनुसंधान सिद्धांत विषयक प्रदेय अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अप्रतिम है ।

• संदर्भ :

1) अनुसंधान और आलोचना, डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1961

2) आस्था के चरण, डॉ. नगेंद्र

3) साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. नगेंद्र

4) डॉ. नगेंद्र द्वारा हिन्दी विभाग, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की एम.फिल. की कक्षाओं में 'अनुसंधान की प्रविधि और प्रक्रिया' विषयक व्याख्यान : 23-08-1985, 06-09-1985, 13-09-1985, 20-09-1985, 27-09-1985, 18-10-1985, 25-10-1985, 01-11-1985, 08-11-1985, 16-11-1985 और 22-11-1985

****

डॉ. राम गोपाल सिंह

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat